International Journal of Information Movement Vol.I Issue IX (January 2017)
Website: ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 96-102

भीष्म साहनी के कथा–साहित्य में नारी–चेतना

मानकी रानी
शोधार्थी (पीएच.डी. हिन्दी)
ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

1.0 शोध विषय का परिचय :

नारी प्रकृति रूपा है, प्रकृति परमपुरुष की इच्छा का प्रतिफलन है। प्रसिद्ध है कि जगन्नियता को जब एकाकी रमने में कुछ ऊब सी हुई तो वे स्वकीय इच्छा–शक्ति से एक से दो हो गए। उस तरह से प्रकृति की सुरुचिपूर्ण रमण सृष्टि है। वह पुरुष की पूरक है। उसे आदिकाल से ही समस्त सृष्टि की संचालिका शक्ति माना जाता है। नारी के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। नारी के संयोग से ही संसार आगे बढ़ता है।

नारी हमेशा से ही पुरुष की प्रेरणा रही है। नारी का शारीरिक सौन्दर्य अगर पुरुष को लुभाता है, इसकी शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति करता है तो नारी का आत्मिक सौन्दर्य पुरुष के कार्यों की प्रेरणा भी बनता है। नारी पुरुष को निराशा के क्षणों में आशा देती है, दुःख में दिलासा देती है और उसके कर्म में उत्साह भरती है।

1.1 नारी : परिभाषा एवं स्वरूप :

प्रत्येक शब्द का इतिहास है। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व है। शब्द अपने वाच्य के स्वरूप का भी संकेत करता है। नारी अर्थ के बोधक शब्द भी नारी के स्वरूप पर बहुत प्रकाश डालते हैं। कवियों की दृष्टि में नारी माया–सी, दुर्बोध, प्रकृति–सी बहुरूपी, साथ ही सहानुभूति–सी सरल रही है। यदि शब्दों कें विकास के साथ मानव सभ्यता के विकास का अध्ययन किया जाए तो जान पड़ेगा कि नारी उतने ही अंश में रहस्यमयी है, जितने अंश में संसार की कोई भी वस्तु। विषम समाज में विषम स्थिति होने के कारण नारी के विभिन्न स्वरूप होते गए। मानव को नारी के साथ शारीरिक, रागात्मक और धार्मिक सम्बन्ध होने के कारण नारी के स्वरूप–भेद हुए। ये भेद प्रभेद इतने जटिल बन गए है, कि आज शब्द के आधार पर नारी के वास्तविक स्वरूप को समझना कठिन है। किसी एक शब्द से नारी के स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। फिर भी, जिस तरह एक छोटे से ओस–बिन्दु में सम्पूर्ण सूर्यमण्डल प्रतिबिम्बित हो जाता है, उसी प्रकार नारी–वाचक छोटे–से–छोटे शब्द में भी उसकी जाति, उसके गुण, उसकी क्रिया अथवा इच्छा झलक जाती है। साथ ही नाम रखने वाले समाज की मानसिक स्थिति, बौद्धिक उन्नति और सांस्कृतिक चेतना भी व्यक्त हो जाती है।

प्राणी जगत में 'नारी' शब्द 'नर' के समानान्तर है। इसका प्रयोग स्त्रीलिंग वाची मादा प्राणियों के रूप में होता है किन्तु मानव समाज में 'नारी' शब्द इस सामान्य अर्थ में गृहित नहीं है, क्योंकि उसका स्थान नर से कहीं बढ़कर है। यही नहीं, रूप–आकार, शरीर संगठन, कार्य–व्यापार एवं जीवन–यापन की विविध स्थितियों में नारी विधाता की उच्चतम परिकल्पना सिद्ध हुई है फिर भी नारी की परिभाषा और स्वरूप को अच्छी तरह जानने के लिए 'नारी' शब्द की व्युत्पत्ति को जानना बहुत आवश्यक है।

1.3 नारी शब्द की व्युत्पत्ति :

'नारी शब्द नृ अथवा नर' से बना है। नृ+घीष=नारी–नरस्य समान धर्मा नारी, नृ+अ+घ्ीन = नारी।'[1]

नारी शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है। 'यास्क ने 'नर' शब्द को नृत से बनाया है–नराः नृत्यन्ति कर्मसु' अर्थात् काम की पूर्ति के लिए मनुष्य हाथ पैर नचाता है। नारी के लिए स्त्री शब्द का प्रयोग भी होता है। यह शब्द उसे पुरुष के लैंगिक सहयोगी के रूप में स्त्राी की व्युत्पत्ति के विषय में निरुक्तकार का मत है कि स्त्री शब्द स्त्रयै धातु से बना है। यास्क के मतानुसार स्त्यै का अर्थ लज्जा से सिकुड़ना है। टीकाकार दुर्गाचार्य नारी की 'स्त्री' संज्ञा उसके लज्जाशील होने के कारण मानता है किन्तु पाणिनी के धातु पाठ में 'स्त्रयै' का अर्थ लजाना नहीं

मिलता। धातुपाठ के अनुसार 'स्त्रयै' शब्द का अर्थ है 'शब्द करना' तथा इक्ट्ठा करना। जान पड़ता है कि नारी का स्त्री नाम सम्भवतः उसके वाचाल होने के कारण ही पड़ा। महर्षि पंतजलि ने अपनी 'अष्टाध्यायी' में समझाया है कि नारी को स्त्री इसलिए कहते हैं कि गर्भ की स्थिति उसके भीतर रहती है। उन्होंने एक दूसरी व्युत्पत्ति भी की है– शब्द स्पर्श–रूप सगंधाना गुणानां स्त्रयानं–संधातम–स्त्री' अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध–इन सब का समुच्चय ही स्त्री है।'[2] इससे स्पष्ट है कि नारी शब्द की व्युत्पत्ति अनेक शब्दों से मानी गयी है।

1.4 'चेतना' की व्याख्या :

'चेतना' प्राणी मात्र में रहने वाला वह तत्त्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है। 'चित्' संज्ञा ने–धातु' में युच, अन टाप प्रत्ययों के संयोग से चेतना शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका अभिप्राय है मन की वह वृत्ति या शक्ति जिससे जीव या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों भाषा, विचारों आदि तथा बाह्य घटनाओं, तत्त्वों या बातों का अनुभव या भान होता है।[3]

चेतना शब्द की व्युत्पत्ति से भी इसी आशय की दृष्टि होती है। अमरकोष में इसको बुद्धि, भगवद्गीता में ज्ञानात्मिका मनोवृत्ति तथा दर्शन में इसको स्वयं प्रकाश–तत्त्व कहा गया है। विज्ञान के अनुसार चेतना वह अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुंचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से चेतना मानव में उपस्थित वह तत्त्व है जिसके कारण उसे सभी प्रकार की अनुभूति होती है। संरचनावादी मनोवैज्ञानिक विल्हम वुट के अनुसार, 'चेतना में संवेदना, विचार, भावना तथा इच्छा सम्मिलित है। उसके अनुसार चेतना का अनुभव दो प्रकार का होता है– संवेदना तथा भावना। संवेदना बाह्य जगत से आती है और भावनाएँ आन्तरिक होती है।[4]

1.5 चेतना का विकास :

चेतना का विकास विभिन्न तत्वों और स्थितियों के संयोग और संस्कारों से होता है। सामाजिक वातावरण और इतिहास बोध का इसको विकसित करने में प्रमुख हाथ रहता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने वंशानुक्रम की प्रस्तुति स्वयं में करता है। विशिष्ट प्रकार के संस्कार पैत्रिक–दाय के रूप में ग्रहण करके विकसित करता है, क्योंकि उसने विभिन्न प्रकार की शिक्षा एवं प्रशिक्षण विविध रूप में प्राप्त किया है। वातावरण और इतिहास बोध के प्रभाव से उसमें नैतिकता, औचित्य, व्यवहार कुशलता, सौन्दर्य–बोध, आध्यात्मिक बोध के प्रति जागरूकता आती है। यही चेतना का विकास है। हिन्दी के समीक्षा क्षेत्र में 'चेतना' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी 'कान्शसनेस' शब्द के अर्थ में ही प्रायः किया जाता है। 'डॉ॰ हरदेव बाहरी ने 'कान्शसनेस' के अनेक अर्थ दिए है जिनमें मुख्य है–प्रतिबोध, चेतन्य, चेतना,संज्ञा, जागृति, ज्ञान, बोध, व्यक्ति की भावनाओं और विचारों की समष्टि, पूर्णता।[5]

1.6 नारी–चेतना का अर्थ एवं स्वरूप :

'नारी' शब्द नर से उत्पन्न माना जाता है तथा चेतना शब्द का अर्थ है प्राणी–मात्रा में रहने वाला वह तत्त्व है जो उसे निर्जीव जड़ पदार्थों से भिन्नता प्रदान करता है। नारी–चेतना का अर्थ हुआ नारी में निहित जागरूक शक्ति। नारी समाज तथा परिवार का एक अभिन्न अंग है। जब तक नारी अपने अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के प्रति सचेत नहीं होगी तब तक न परिवार ठीक से चल सकता है और न ही समाज। प्राचीन काल से आज तक नारी में चेतना का निरन्तर विकास होता रहा है। वह निरन्तर विकास की सीढ़ियों पर चढ़ती रही है। नारी की प्रशंसा में शिवजी बतलाते हैं कि–फ्नारी के समान न योग है, न जप है, न तप है, न तीर्थ है। यही इस संसार की सर्वाधिक पूजनीय देवता है क्योंकि वह पार्वती का रूप है। उसके समान न कुछ था, न ही कुछ होगा।[6]

प्रारम्भ में नारी केवल एक विलास की सामग्री थी। नारी के विभिन्न रूप माँ, बहन, पुत्री आदि अधिक विकसित न हो सके थे। नारी का क्षेत्र बहुत संकुचित था। स्त्रियों को घर की चार–दीवारी के अन्दर ही रहना होता था। उन्हें पढ़ने–लिखने, नौकरी आदि की किसी भी प्रकार की आजादी नहीं थी। नारियाँ एक प्रकार की घुटन भरी ज़िन्दगी व्यतीत कर रही थी।

ये नारी–चेतना का ही विकास है कि नारी वर्तमान में कन्धे से कंधा मिलाकर पुरुषों के साथ कार्य कर रही है। नारी के मन में पुरुष की दासता से मुक्त होने की ललक पैदा होती है। नारी अब शिक्षित भी हो चुकी है। कर्मभूमि उपन्यास की 'सुखदा' पुलिस के सामने खड़ी होकर कहती है–'क्यों भाग रहे हो? यह भागने का समय नहीं। छाती खोलकर खड़े होने का समय है। दिखा दो कि तुम धर्म के नाम पर किस तरह प्राणों का होम करते हो। भागने वालों की कभी विजय नहीं होती।[7] इस समय स्त्रियाँ जागरूक हो चुकी है। वो पुरुषों में शक्ति का संचार है। एक बार एक फ्रेंच लेखक ने भी लिखा था कि अगर किसी देश की अवस्था का पता लगाना हो, तो वहाँ की स्त्रियों की दशा जानना जरूरी है। इसका तात्पर्य है कि जो समाज जितना अधिक उन्नतिशील होगा, वहाँ स्त्रियाँ की दशा उतनी ही विकसित होगी।

पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से भारतीय नारी ने नई रोशनी, नई सभ्यता के प्रसार में देखा कि वह पति की दासी नहीं हैं। समाज में नारी को भी पुरुष के समान अधिकार है। बाल–विवाह, अनमेल–विवाह, विधवा–विवाह और वेश्यावृत्ति के विरुद्ध आन्दोलन चरम पर था। प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने लिखा है–'स्त्री–पुरुष एक होकर रहे, दोनों में मतभेद न होने पावे। स्त्री को गर्व न हो कि मैं स्वामी से बड़ी हूँ और न स्वामी को अभिमान हो कि ईश्वर ने सब बुद्धि मेरे ही हिस्से में रखी है। स्त्री घर की मालकिन है और पुरुष बाहर का, लेकिन दोनों में मतैक्य हो दोनों इस पवित्र प्रेम सूत्र में बंधे हों, जहाँ न राज है न अभिमान, न द्वेष है और न कलह।[8] भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं समाज में नारी को बहुत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। दर्शन नारी को प्रकृति रूपा मानता है। वह सृष्टि के मूल में है। पुरुष के रागात्मक जीवन में नारी सदैव उच्च स्थान की अधिष्ठात्री रही है। वह परिवार की संचालिका है। वैदिक साहित्य में नारी के पत्नी रूप को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वहाँ प्रत्येक गृहस्थ द्वारा कन्या की कामना की गई है। पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं माना गया। पुराणकाल में कन्या को देवी रूपा स्वीकार किया गया है जबकि श्रीमद्भागवत में नारी के कन्या रूप को गुणगान है।

इस प्रकार नारी–चेतना की परम्परा वेदों–पुराणों से चली आ रही है। अंग्रेजी प्रशासन ने शिक्षा में सुधार लाकर नारी को जागृत किया और नारी ने स्वाधीनता आन्दोलन में पुरुष के समान प्रयत्न किये। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय नारी ने अधिकाधिक प्रगति की ओर कदम बढ़ाए और देश के उच्चतम प्रशासकीय पदों पर काम किया व अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अपने व्यक्तित्व का प्रभाव सिद्ध किया। स्त्री जागृति हुई उसे पुरुष के समान अधिकार मिले। आज की नारी परम्परा की लीक पाटने की अपेक्षा नई चुनौतियों भरी राहों पर चलने का खतरा उठाने को तत्पर है। परिणामस्वरूप नारी के विकास की गति बढ़ी उसमें अधिकार बोध विकसित हुआ।

1.7 हिन्दी–साहित्य में नारी–चेतना :

हिन्दी साहित्य के आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिक काल के साथ–साथ हिन्दी गद्य साहित्य में भी नारी–चेतना का विकास हुआ है। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं–

आदिकाल : हिन्दी का आदिकाव्य वीरगाथाओं तथा धार्मिक उपदेशों के रूप में लिखा गया है। फिर भी तत्कालीन वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुसार इस काव्य में नारी के वीरांगना एवं कामिनी दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। इस काल में अधिकांश साहित्य राजकुमारियों के अपहरण तथा उनके फलस्वरूप होने वाले युद्धों का वर्णन मिलता है। फ्इस सामन्तवादी युग में नारी की स्थिति अच्छी नहीं थी। रासो काव्य की नायिकाओं के जीवन भी नारी–दुर्दशा की कहानी ही कहते हैं।[9]

इस काल में नारी सौन्दर्य वर्णन भी स्वस्थ मनोवृत्ति का परिचायक नहीं था। डॉ॰ उषा पाण्डे का यह कथन अत्यन्त समीचीन जान पड़ता है–'वीर काव्य में भी नारी का श्रृंगार–सौरभ की मादकता से बोझिल स्वरूप ही दृष्टिगत होता है। उसके वीरांगना, वीरमाता और क्षत्राणी के प्रांजल रूप को श्रृंगार की धूप ने प्रच्छन्न–सा कर दिया है।[10] तत्कालीन समाज में नारी, बिलास की सामग्री होने के कारण पुरुष की निजी सम्पत्ति ही मानी जाती थी। मनुष्य स्वयं तो अपनी इच्छा से कई पत्नियाँ रख सकता था, किन्तु नारी के लिए पति की मृत्यु के पश्चात् सती हो जाना उसका कर्त्तव्य बना दिया गया। उपेक्षित नारीत्व इस प्रक्रिया के फलस्वरूप श्रृंगार की प्रेरणा बन गया था।

भक्तिकाल : इस काल के साहित्य में नारी मुख्यतः दो रूपों में अंकित हुई एक ओर तो वह सामान्य नारी रूप में निंदा एवं उपेक्षा की पात्र रही तो दूसरी ओर आराध्य देवताओं की संगिनी के रूप में सम्मानित भी हुई। एक ओर तो इस युग में निर्गुणमार्गी संत कवि थे। जिन्होंने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा एवं पुरुष को विनाश के पथ पर ले जाने वाली माना है। 'कबीर ने नारी को नरक का द्वार माना है। मलूकदास ने नारी के नेत्रों को भयानक कहते हैं तथा दादूदयाल संसार को पतंगा तथा कनक–कामिनी को दीपक की लौ बताते हैं।[11]

दूसरी तरपफ प्रेममार्गी कवि जायसी ने नारी को ब्रह्म का प्रतीक मानकर उसकी प्रशंसा की है। तुलसीदास ने नारी के प्रति घृणात्मक दृष्टिकोण के कारण ही उसे 'ढोल गंवार शुद्र एवं पसु' के सादृश्य बताया। डॉ॰ नगेन्द्र के मतानुसार, तुलसीदास के 'रामचरितमानस' तथा अन्य ग्रन्थों के विभिन्न प्रसंगों में, ऐसी अनेक उक्तियाँ हैं, जो किसी भी देशकाल की नारी के प्रति न्याय नहीं करती। उन्होंने नारी की प्रकृति, बुद्धि, विवेक, आचार, व्यवहार सभी की निंदा की है।[12] सूर के काव्यों में गोपियों एवं राधा के माध्यम से नारी का जो प्रेमिका रूप निरुपित हुआ है, वह प्रेममय एवं त्यागमय तो अवश्य है, किन्तु साथ ही वह एक असहाय निरुपाय नारी का चित्र भी प्रस्तुत करता है। अतः इस काल के कवियों के नारी विषयक दृष्टिकोण में मतभेद ही रहा है। फ्एक ओर तो उसे मुक्ति–मार्ग की बाधा मानकर उसकी उपेक्षा की है तो दूसरी ओर सीता, पार्वती की वन्दना भी की है। एक ओर उसे नागिन व नरक का द्वार कहा है तो दूसरी ओर अपनी आत्मा को भी नारी–रूप में ही अंकित किया है।[13]

रीतिकाल : रीतिकाल में भक्तिकाव्य की उपेक्षित नारी रीतिकालीन मुक्तक काव्य में आकर्षण की केन्द्र बिन्दु 'नायिका' बन गई और ये मुक्तिकार नायिका भेदोपभेद एवं नरक–शिखा वर्णन में अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाने लगे।

इन कवियों ने राधा–कृष्ण की लीलाओं का जो वर्णन किया है, उसमें भी आध्यात्मिकता की आड़ में नारी के प्रति वासना ही व्यक्त हुई है। उस विलासपूर्ण वातावरण में नारी का केवल कामिनी एवं प्रेयसी रूप ही शेष रह गया। फ्यद्यपि इस काव्य में अंकित प्रेमिकाएँ अधिकांश में परकीथाएँ ही हैं, जिनमें उज्ज्वल पत्नीत्व की गरिमा को खोजने पर निराशा ही मिलती है, फिर भी, प्रिय के ध्यान में आत्मविस्मृत हो अपना ही प्रतिबिम्ब दर्पण में देखकर रीझने वाली यह प्रेमिका रूपा नारी, प्रेमिका के उत्कर्षमय भाव–संवलित रूप का आदर्श भी प्रस्तुत करती है।[14]

इन कवियों की दृष्टि न तो सीता के प्रतिव्रत पर गई, न सावित्री के सतीत्व पर, न पार्वती की पावनता पर गई और न ही यशोधा की ममतामयी मातृ–गरिमा पर! रीतिबद्ध कवियों के द्वारा तो नारी के सामाजिक जीवन के महत्त्व का उद्‌घाटन हो ही नहीं पाया, रीतिमुक्त कवियों में भी उसका यह महत्त्व व्यक्त नहीं हो पाया। सभी बंधी–बंधाई लकीर पर उसके अंग–प्रत्यंग की शोभा, हाव–भाव और विलास चेष्टाओं का वर्णन करते रहे। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद के शब्द विशिष्ट रूप में अवलोकनीय है–'यहाँ नारी कोई व्यक्ति या समाज के संगठन की इकाई नहीं है, बल्कि सब प्रकार की विशेषताओं के बन्धन से यथासम्भव मुक्त विलास का एक उपकरण मात्र है।

आधुनिक काल : आधुनिक काल में सर्वप्रथम भारतेन्दु युग आता है। इस काल के कवियों की दृष्टि नारी के विविध रूपों पर तो अवश्य गई है। किन्तु वे उसकी शक्ति के प्रति पूर्णतः आश्वस्त नहीं जान पड़ते। इस युग में नारी के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण होते हुए भी नारी निपट भोग्या या उपेक्षित नहीं रही। उसकी हीन–दशा के प्रति भी कवि की सहानुभूति सजग हुई और उसको आवश्यक आदर देने की दिशा में भी ये कवि अग्रसर हुए।

द्विवेदी युगीन काव्य में नारी सम्बन्धी दो दृष्टियाँ मिलती हैं–एक रीतिकाव्य के अवशेष रूप में उसी परम्परा की कड़ी में जुड़ी हुई भारतेन्दु और बदरीनारायण प्रेमधन की नायिकाएँ।[15] दूसरी युग चेतना से प्रभावित गुप्त और हरिऔध के नारी चित्रण। गुप्त जी ने नारी चरित्रों का सर्जन पुरुषों की भोग्या एवं काव्या के रूप में नहीं वरन् पुरुष की संगिनी वाली भावना से किया है। 'साकेत', यशोधरा और 'विष्णुप्रिया' नारी प्रधन कृतियाँ हैं। गुप्त जी कहते हैं कि 'नारी को मानवतावादी मूल्य, भावनाशील दृष्टि और सामाजिक सम्पन्नता की कसौटी पर परखते हैं।[16]

रीतिकाल की नारी चौबीस घंटे भोग–विलास की वस्तु थी और द्विवेदी युग की नारी सती सीता और सावित्री की भांति मात्र वन्दनीया। यह बदलते हुए सामाजिक सन्दर्भों की देन है कि छायावादी कवियों की नारी आदर्श और कल्पना के उच्चासन पर आसीन सुकुमार भावना और पुरुष की चिरसंगिनी है। 'प्रसाद के काव्य में नारी के पत्नी, प्रेयसी, गृहिणी आदि का चित्रण भी मिलता है। इन्होंने नारी के सौन्दर्य का सर्वथा नवीन, मौलिक, स्वर्गिक, प्रकृति के अनूठे उपमानों से भरा रूप चित्रित है। प्रकृति में नारी रूप को समाहित कर उदात्त भावभूमि प्रदान की है।

निराला यह मानकर चलते हैं कि 'नारी का सौन्दर्य रीतिकालीन कवियों के मांसल चित्राण में सीमित नहीं वरन् विस्तृत, दिव्य और रमणीय है। इन कवियों ने नारी का भाव–चित्रण ही किया है, नारी सम्बन्धी अपनी मानसिक प्रतिमा का ही निर्माण किया है। इसलिए इनकी नारी वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ है, मांसल न होकर सूक्ष्म है। वह काल्पनिक और वायसी है।

दूसरी तरफ कथा–साहितय में प्रेमचंद के बाद के युग की नारी ने भारतीय समाज की परम्परागत मान्यताओं को तोड़ा है। उसने स्वावलम्बी बनने का प्रयास किया है और शिक्षित होकर समाज में अपने लिए नई राहों को तलाशा है। वह भी पुरुष की तरह स्वतन्त्रा, स्वच्छंद और आर्थिक दृष्टि से सबल हुई है।

1.8 भीष्म साहनी : जीवन और रचना संसार

भीष्म साहनी जी का जन्म 8 अगस्त 1915 को हुआ। इनका जन्म स्थान 'रावलपिण्डी' है जो कि अब पाकिस्तान में है। इनका परिवार आर्यसमाजी था। कृष्णा सोबती के अनुसार–भीष्म हिन्दुस्तानी है, पर उनका पुराना वतन रावलपिण्डी है। रावलपिण्डी पाकिस्तान में है लेकिन वबलराज और भीष्म दोनों रावलपिण्डी के ही बेटे कहलाएगें। उनका बचपन वहीं गुजरा था। बचपन एक बार जिया जाता है। उसे वहाँ की मिट्टी से कौन जुदा कर सकता है। (सिर्फ विभाजन)।[17]

भीष्म साहनी जी की प्रारम्भिक शिक्षा घर में हुई। एक वर्ष तक गुरुकुल में अध्ययन करके डी॰ए॰वी॰ स्कूल रावलपिंडी से शिक्षा प्राप्त की। वैसे तो साहनी जी ने बी॰ए॰ के बाद एम॰ए॰ में दाखिला इसीलिए लिया था ताकि वे खेल सकें। फिर भी उन्होंने गवर्नमेंट कालेज ऑफ लाहौर से 1937 में अंग्रेजी साहित्य में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। उसके बाद पंजाब विश्वविद्यालय से 'हिन्दी उपन्यासों में नायक की परिकल्पना' विषय पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। साहनी जी ने पढ़ाई के बारे में कहा है–लकड़पन में इतिहास में बड़ी रुचि थी। अब भी है। साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्रा आदि में रुचि हैं, पर मैं नियमित रूप से नहीं पढ़ पाता।[18]

साहनी जी को बचपन से ही खेल–कूद का शौक था। स्कूल के दिनों में हॉकी अच्छी खेलते थे। यहाँ तक कि कालेज में भी हॉकी के अच्छे खिलाड़ी थे। उसके बाद इन्हें लम्बी सैर, तैराकी आदि का भी शौक था। साहनी जी को यात्रा करना भी बहुत पसंद था। इनको चित्रकला और मूर्तिकला आदि देखने का भी शोक था।

साहनी जी का स्वभाव समय के साथ–साथ बदलता रहता था। जब हॉकी खेलते थे तो गोल करने और मेडल जीतने के सपने देखते थे। जब नाटक खेलने लगते तो उत्कृष्ट अभिनय के सपने देखते। पर ये सपने कम और दिवा स्वप्न अधिक हुआ करते थे। जब उनके पिता जी के उन्हें व्यापार का प्रस्ताव रखा कि वे कराची जाकर व्यापार करें। तब वे एक चुस्त दुरुस्त व्यापारी की भूमिका में स्वयं को देखने लगे। साहनी जी देखने लगे कि चमचमाते जूते, बढ़िया सूट और नेकटाई और जाने क्या–क्या! साहनी जी ऐसे सपने नहीं देखते थे, जिनमें कोई महत्वाकांक्षा की लम्बी–चौड़ी उड़ाने छिपी हो। साहनी जी मानते थे कि धरती के साथ–साथ चलना ही बेहतर है। साहनी जी स्वभाव से उदार हृदय थे। वे माता–पिता का आदर करते थे। बड़े भाई को भी पूरा मान–सम्मान देते थे। ये बात और थी कि खेल–खेल में झगड़ा हो जाता था। उदार हृदय का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है कि उसके सभी दोस्त गरीब थे, जबकि उनमें से कई दोस्त तो मुसलमान थे।

साहित्यिक प्रेरणा : भीष्म साहनी जी को साहित्य लिखने की प्रेरणा स्कूल समय में ही मिलनी प्रारम्भ हुई। उनके अंग्रेजी के अध्यापक जसवंत राय सुन्दर व्यक्तित्व के स्वामी थे। साहित्य में उनकी विशेष रुचि थी।

अंग्रेजी कविता पढ़ाते थे तो एक अद्‌भुत संसार आंखों के सामने खुलता था। जसवंत राय से साहनी को बड़ी प्रेरणा मिली। साहनी जी के परिवार में साहित्यिक माहौल पहले से चला आ रहा था। मेरी फुफेरी बहनें, सत्यवती मल्लिक जानी–मानी कहानीकार थी, पुरुषार्थवती छोटी उम्र में चल बसी, पर बड़ी सुन्दर मर्मस्पर्शी कविताएँ छोड़ गयी। उनके पति श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ख्याति प्राप्त लेखक थे।[19]

इनके अतिरिक्त भीष्म जी को प्रेमचंद के 'गोदान' तथा यशपाल के 'पिंजरे की उड़ान' से साहित्यिक प्रेरणा मिली–बड़े भाई बलराज साहनी का प्रभाव भी उन पर पड़ा। बलराज जी के व्यक्तित्व का भी और उनकी साहित्यिक रुचि का भी। उन्हीं के साथ बचपन से ही नाटक आदि खेलते थे। भीष्म साहनी जी एक घटना को साहित्यिक प्रेरणा का हिस्सा मानते हैं। मास्को निवास के दिनों में उनकी मुलाकात निर्मल जी से हुई तो दोनों ने एक–दूसरे से आत्म–स्वीकृति के तौर पर कहा कि हम न तो लेखक कह सकते हैं, न मानते ही हैं। संजीदगी के साथ लिखना शुरू किया। इससे पहले कोई संकल्प नहीं था।

विवाह एवं सन्तान : भीष्म साहनी जी का विवाह सन् 1943 में शीला जी के साथ हुआ। जब साहनी जी की शादी हुई तो वे 28 वर्ष के थे और उनकी पत्नी 20 वर्ष की थी। शीला साहनी जी खुले विचारों की महिला थी। उन्होंने रेडियो में नौकरी की, ज्यादा स्वतन्त्र हो गई थी। भीष्म साहनी जी अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे। सबसे बड़ा उदाहरण है कि 'मेरी रचनाओं की पहली पाठक मेरी पत्नी होती थी।'[20]

साहनी जी का परिवार छोटा–सा था। एक लड़का और एक लड़की थी। लड़की कल्पना थी जबकि लड़के का नाम वरुण था। हमारा छोटा परिवार! एक लड़की जिसकी शादी हो गयी है। लड़का मास्को में पढ़ता है। मैं और मेरी पत्नी रहते है। मेरे यहाँ कोई नौकर नहीं है। घर का कामकाज दोनों मिलकर ही करते हैं।[21]

व्यवसाय : भीष्म साहनी जी कालिज में अध्यापन के साथ–साथ व्यापार करने लगे थे। व्यापार मुख्यतः कपड़े का था। इनके पिता जी के पास विभिन्न कारखानों की एजेंसियाँ थी, ये कपड़े के व्यापारियों से आर्डर लेकर कारखानेदारों को भेजते और माल आ जाने पर इन्हें कमीशन मिलता था। साहनी जी स्थानीय कालेज में आनरेरी तौर पर पढ़ाने लगे। जी॰एम॰एन॰ कालेज, अम्बाला, तथा खालसा कालेज, अमृतसर में कुछ समय अध्यापन कार्य करते रहे। बाद में जाकिर हुसैन कालेज, दिल्ली में अंग्रेजी प्राध्यापक पद पर कार्य करते रहे।

सम्मान एवं पुरस्कार :साहनी जी की श्रेष्ठ रचनाओं के आधार पर इन्हें बहुत से पुरस्कार प्राप्त हुए। 'तमस' उपन्यास पर साहनी जी को सन् 1975 में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।[22] इसी वर्ष पंजाब सरकार ने भाषा–विभाग ने 'शिरोमणि लेखक' पुरस्कार से विभूषित किया। सन् 1980 में साहनी जी को ऐ॰ए॰ एशियाई लेखक संघ की ओर से 'लोटस' पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'हानूश' तथा 'कबिरा खड़ा बजार में' (नाटक) और झरोखे (उपन्यास) पर भी ईनाम मिले। दिल्ली प्रदेश साहित्य कला परिषद द्वारा भी सम्मानित और पुरस्कृत किए गए।

देहान्त : भीष्म साहनी जी की महान् आत्मा 11 जुलाई 2003 को परमात्मा में तल्लीन हो गई और एक महान साहित्यकार के जीवन का अंत हुआ। साहनी जी अपने महान् साहित्य के कारण युगों–युगों तक अमर रहेंगे।

1.9 भीष्म साहनी का रचना संसार :

स्वतन्त्राता के बाद के साहित्यकारों में भीष्म साहनी का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इतने लम्बे समय से बिना किसी शोर–शराबे के साहित्य से सक्रिय रूप से जुड़े रहे। स्वतन्त्रता के बाद साहित्य का अध्ययन आन्दोलनों के माध्यम से हुआ, परन्तु भीष्म साहनी की विविधतापूर्ण रचनाओं को किसी आंदोलन की सीमाओं में नहीं बांधा जा सका।

भीष्म साहनी ने कहानीकार से उपन्यासकार के रूप में और उसके बाद नाटककार के रूप में अपनी पहचान बनाई। साहनी जी बहुमुखी प्रतिभा के लेखक थे। भीष्म साहनी जी ने कहानी, उपन्यास और नाटकों के साथ–साथ जीवनी तथा निबन्ध भी लिखे। इन्होंने अब तक आठ कहानी संग्रह, छः उपन्यास, चार नाटक और एक जीवनी के साथ–साथ निबन्ध–संग्रह लिखा है।

कहानी संग्रह :

1. भाग्य रेखा
2. पहला पाठ
3. भटकती राख
4. पटरियाँ
5. वाघ्चू
6. शोभायात्रा
7. निशाचार
8. पाली।

उपन्यास संग्रह :

1. झरोखे
2. कड़ियाँ
3. तमस
4. बसन्ती
5. मययादास की माड़ी
6. कुतों।

नाटक :

1. हानूश
2. कबिरा खड़ा बजार में
3. माधवी
4. मुआवजे।

आत्मकथा :

आज के अतीत।

निबन्ध–संग्रह :

अपनी बात।

बालोपयोगी–साहित्य :

गुलेल का खेल।

2.0 संदर्भ सूची :

1. डॉ॰ वल्लभ दास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 36
2. डॉ॰ वल्लभ दास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 37
3. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ. 274
4. रामपाल सिंह वर्मा, मनोविज्ञान के सम्प्रदाय, पृ. 3
5. डॉ॰ हरदेव बाहरी, वृहत अंग्रेजी–हिन्दी कोश, पृ. 275
6. वृहद्–संहिता, पृ. 74
7. डॉ॰ रेखा कुलकर्णी, हिन्दी के सामाजिक उपन्यासों में नारी, पृ. 84
8. वही, पृ. 70
9. डॉ॰ सौ॰जे॰एम॰ देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 38
10. डॉ॰ सौ॰ जे॰एम॰ देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 39
11. वही, पृ. 40
12. वही, पृ. 41
13. डॉ॰ सौ॰जे॰एम॰ देसाई, आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी, पृ. 43
14. वही, पृ. 44
15. डॉ॰ शिव कुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ. 336
16. मैथिलीशरण गुप्त, व्यक्ति और रचना, पृ. 127
17. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, पृ. 64
18. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनी, व्यक्ति एवं रचना, पृ. 33
19. रा॰ स॰ : प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, पृ. 11
20. भीष्म साहनी, अपनी बात, पृ. 19
21. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर, भीष्म साहनी : व्यक्ति एवं रचना, पृ. 22
22. वही, भीष्म साहनी : व्यक्ति एवं रचना, पृ. 5